IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

"डॉ. भीमराव अम्बेडकर की जन–संगठन रणनीतियाँ और दलित राजनीतिक चेतना का उदय (1917–1956): एक सामाजिक–राजनीतिक विश्लेषण"

[1]कमलेश यादव

शोधार्थी

राजनीति विज्ञान विभाग

राजकीय महिला महाविद्यालय, हर्रैया बस्ती

सिद्धार्थ विश्वविद्यालय कपिलवस्तु

सिद्धार्थनगर, उत्तर प्रदेश

[2]डॉ बीरेंद्र प्रताप

एसोसिएट प्रोफेसर

राजनीति विज्ञान विभाग

राजकीय महिला महाविद्यालय, हर्रैया बस्ती

सिद्धार्थ विश्वविद्यालय कपिलवस्तु

सिद्धार्थनगर, उत्तर प्रदेश

सार: डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने 1917 से 1956 तक दलित समुदाय में राजनीतिक चेतना के विकास के लिए व्यापक और बहुस्तरीय रणनीतियाँ अपनाईं। उन्होंने शिक्षा को मुक्ति का प्रथम साधन मानते हुए दलितों में आत्मसम्मान और जागरूकता की भावना जगाई। मूकनायक और बहिष्कृत भारत जैसे समाचारपत्रों के माध्यम से उन्होंने सामाजिक भेदभाव, प्रतिनिधित्व और अधिकारों पर विमर्श को राष्ट्रीय स्तर पर स्थान दिया। 1927 का महाड़ सत्याग्रह और मनुस्मृति–दहन सामाजिक समानता की लड़ाई के ऐतिहासिक क्षण थे जिन्होंने दलितों में संघर्ष और संगठन की नई चेतना उत्पन्न की। नासिक मंदिर–प्रवेश आंदोलन ने धार्मिक–सामाजिक समानता को राजनीतिक प्रश्न में बदल दिया। गोलमेज सम्मेलनों में उनकी दृढ़ भागीदारी ने दलितों के राजनीतिक प्रतिनिधित्व को अंतर्राष्ट्रीय विमर्श का हिस्सा बनाया, जबकि 1932 का पूना पैक्ट दलित राजनीतिक दृश्यता का स्थायी आधार बना। स्वतंत्र मजदूर पार्टी और अनुसूचित जाति महासंघ ने दलितों को संगठित राजनीतिक शक्ति में रूपांतरित किया। संविधान–निर्माण में अम्बेडकर के नेतृत्व ने समानता, न्याय, स्वतंत्रता और अस्पृश्यता–उन्मूलन को संवैधानिक संरचना में स्थापित किया। 1956 का नव–बौद्ध आंदोलन दलित चेतना के आध्यात्मिक पुनर्जन्म का प्रतीक बना। अम्बेडकर की इन रणनीतियों ने दलितों को पराधीनता से आधुनिक नागरिकता तक पहुँचाया।

सूचक शब्द: दलित राजनीतिक चेतना, महाड़ सत्याग्रह, पूना पैक्ट, दलित आंदोलन, अनुसूचित जाति महासंघ, संविधान–निर्माण, सामाजिक न्याय, राजनीतिक प्रतिनिधित्व आदि।

1. परिचय

बीसवीं सदी का भारत सामाजिक अन्याय, जातिगत असमानता और औपनिवेशिक शोषण की बहुस्तरीय संरचना में उलझा हुआ था। समाज के भीतर सदियों से चले आ रहे वर्ण आधारित भेदभाव ने दलित समुदाय को ऐसे स्थान पर खड़ा कर दिया था जहाँ उनकी आवाज अनसुनी थी, उनके अधिकार परिभाषित नहीं थे और उनकी पहचान केवल सामाजिक श्रेणीकरण का उपोत्पाद थी। राष्ट्रवाद की लहर के बीच भी दलित समाज स्वयं को राजनीतिक रूप से उपेक्षित पाता था। ऐसे सामाजिक–राजनीतिक परिदृश्य में डॉ. भीमराव अम्बेडकर का उदय भारतीय इतिहास में एक सर्वोपरि परिवर्तनकारी घटना के रूप में सामने आया[1]। वे न केवल सामाजिक न्याय के प्रबल समर्थक थे, बल्कि उन्होंने दलित समुदाय को बौद्धिक चेतना, राजनीतिक आत्मविश्वास और संघर्षशील संगठन की शक्ति प्रदान की। 1917 से 1956 का कालखण्ड अम्बेडकर द्वारा दलित समाज को एक प्रभावी राजनीतिक शक्ति में बदलने की चाक–चौबंद यात्रा का वह निर्णायक काल है जिसका प्रभाव आज भी भारतीय लोकतंत्र की गहराइयों तक महसूस किया जाता है। यह शोध–पत्र इसी अवधि में अम्बेडकर की संगठनात्मक रणनीतियों, वैचारिक हस्तक्षेपों और व्यापक जन–आधारित आंदोलनों के माध्यम से दलित राजनीतिक चेतना के उदय का विश्लेषण करता है[2]।

आरंभिक वैचारिक निर्माण और आत्मसम्मान की पुनर्प्राप्ति (1917–1920)

1917 में अम्बेडकर विदेश से शिक्षा पूरी कर भारत लौटे, तब उन्होंने पाया कि दलित समाज उस समय केवल आर्थिक और सामाजिक रूप से वंचित ही नहीं था, बल्कि वह मनोवैज्ञानिक रूप से भी पराधीनता की कैद में था। शिक्षा और अवसरों की सीमितता ने उनके भीतर हीनता की ऐसी भावना भर दी थी जो राजनीतिक भागीदारी की कल्पना से भी उन्हें दूर रखती थी। अम्बेडकर ने समझा कि दलित राजनीतिक चेतना की नींव सामाजिक–मानसिक मुक्ति से रखी जानी चाहिए। उन्होंने शिक्षा को आंदोलन का पहला स्तंभ बनाया और यह स्पष्ट किया कि "शिक्षा के बिना मुक्ति असम्भव है"। इस दृष्टिकोण के चलते उन्होंने दलितों को पहले आत्मज्ञान और फिर राजनीतिक अधिकारों की ओर अग्रसर किया। इस दौर में उनके सार्वजनिक भाषणों, लेखों और बहसों ने दलितों के भीतर एक नई वैचारिक ऊर्जा उत्पन्न की। वे अपनी स्थिति को समाज की नियति नहीं, बल्कि परिवर्तन योग्य वास्तविकता के रूप में देखने लगे[3]।

अम्बेडकर का यह आरंभिक चरण इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि उन्होंने इस दौरान भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की सीमाओं को चिह्नित किया। उनका तर्क था कि दलित प्रश्न केवल नैतिक सुधार का नहीं, बल्कि राजनीतिक प्रतिनिधित्व का प्रश्न है। यह वैचारिक हस्तक्षेप दलितों को राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्यधारा में अपनी स्वतंत्र पहचान के साथ स्थापित करने की दिशा में पहला कदम था।

संस्थाओं का विकास और सामाजिक संचार का नेटवर्क निर्माण (1920–1926)

अम्बेडकर का दूसरा चरण दलित राजनीतिक चेतना को सांस्थानिक रूप देने का था। उन्होंने समझा कि दलित समाज को स्थायी राजनीतिक शक्ति बनाने के लिए संगठनात्मक ढाँचे की आवश्यकता है। 1920 में मूकनायक नामक समाचारपत्र की शुरुआत इसी सोच का परिणाम थी। यह पत्र दलित मुद्दों का पहला संरचित मंच था जहाँ अस्पृश्यता, नागरिक अधिकार, श्रमिक शोषण, और सामाजिक सुधार पर विचार–विमर्श होता था। मूकनायक ने दलित समुदाय को यह समझने का अवसर दिया कि उनकी समस्याएँ स्थानीय नहीं बल्कि संरचनात्मक हैं, और उनका समाधान सामूहिक आवाज के माध्यम से ही संभव है[4]।

1924 में अम्बेडकर ने बहिष्कृत हितकारिणी सभा की स्थापना की, जिसने दलितों के शैक्षिक, सामाजिक और राजनीतिक उत्थान को गति प्रदान की। इसका उद्देश्य दलितों को आधुनिक शिक्षा

उपलब्ध कराना, सामाजिक सुधार के लिए प्रेरित करना, और उन्हें राजनीतिक अधिकारों के प्रति सचेत बनाना था। इस संस्था के माध्यम से अम्बेडकर ने दलित समुदाय को आत्मनिर्भर और संगठित होने की दिशा में प्रेरित किया। सभा की बैठकों, अभियानों, कानूनी सलाहों और गतिविधियों ने दलित समाज में राजनीतिक जागरूकता का माहौल निर्मित किया[5]।

1920–1926 का समय अम्बेडकर के संगठनात्मक कौशल का उत्कृष्ट उदाहरण है। इस चरण में उन्होंने दलित समाज को नई भाषा, नए विमर्श और नए राजनीतिक दृष्टिकोण से परिपूर्ण किया। यह वह समय था जब दलित समुदाय पहली बार एक राजनीतिक इकाई के रूप में उभरना शुरू हुआ।

जन–आंदोलनों के माध्यम से सामाजिक समानता की लड़ाई (1927–1935)

1927 का महाड़ सत्याग्रह भारतीय सामाजिक इतिहास में एक निर्णायक मोड़ है। यह आंदोलन केवल पानी के अधिकार का नहीं बल्कि सामाजिक बराबरी के मूलभूत प्रश्न का प्रतीक था। अम्बेडकर ने चावदार तालाब पर जाकर पानी पीकर यह सिद्ध किया कि सार्वजनिक संसाधनों पर दलितों का उतना ही अधिकार है जितना किसी अन्य नागरिक का। इस आंदोलन ने दलित समाज में आत्मसम्मान का ऐसा संचार किया कि वे पहली बार यह अनुभव करने लगे कि उनके अधिकारों का उल्लंघन कोई प्राकृतिक या धार्मिक व्यवस्था नहीं है, बल्कि सत्ता–वर्ग द्वारा निर्मित सामाजिक नियंत्रण का तंत्र है। महाड़ सत्याग्रह के दौरान उनका उद्घोष —"मनुष्य जन्मजात स्वतंत्र है" — आजादी की लड़ाई से भी कहीं अधिक गूंजदार सामाजिक क्रांति का प्रतीक बन गया।

इसी वर्ष का मनुस्मृति–दहन दलित राजनीतिक चेतना में वैचारिक विद्रोह का पहला महत्त्वपूर्ण अध्याय है। अम्बेडकर ने स्पष्ट किया कि यदि सामाजिक उत्पीड़न के धार्मिक–वैचारिक आधारों को चुनौती नहीं दी जाएगी, तो राजनीतिक सुधार केवल सतही होंगे। मनुस्मृति–दहन ने दलितों को अपने ऊपर थोपे गए आध्यात्मिक बंधनों को नकारने का साहस दिया। इसने राजनीतिक चेतना को दार्शनिक गहराई प्रदान की[6]।

1930–1935 का नासिक मंदिर–प्रवेश आंदोलन सामाजिक न्याय के इतिहास में अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। यहाँ पहली बार दलित समाज ने यह संदेश दिया कि आध्यात्मिक समानता के बिना सामाजिक और राजनीतिक समानता अधूरी है। मंदिर–प्रवेश के संघर्ष ने दलित आंदोलन को नए सामाजिक विस्तार दिए और यह स्पष्ट कर दिया कि अब दलित समाज अपने अधिकारों की लड़ाई के लिए पीछे नहीं हटेगा[7]।

राजनीतिक प्रतिनिधित्व और गोलमेज सम्मेलन की निर्णायक भूमिका (1930–1932)

अम्बेडकर ने दलित प्रश्न को राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय मंच पर प्रस्तुत करते हुए इसे राजनीतिक प्रतिनिधित्व के ढांचे से जोड़ा। गोलमेज सम्मेलनों में उनकी भागीदारी इस बात का ऐतिहासिक प्रमाण है कि दलित समुदाय अब केवल सामाजिक जीवन का परित्यक्त समूह नहीं रहा, बल्कि वह औपनिवेशिक शासन और राष्ट्रीय नेतृत्व दोनों के लिए राजनीतिक वास्तविकता बन चुका था। अम्बेडकर ने पृथक निर्वाचिका की मांग इसलिए उठाई क्योंकि वे जानते थे कि बहुसंख्यकवाद की राजनीति में दलित प्रतिनिधित्व असंभव होगा।

उनके तर्क, आंकड़े और ऐतिहासिक विश्लेषण ने अंग्रेजी शासन और भारतीय नेतृत्व दोनों को हिला दिया। यद्यपि 1932 का पूना पैक्ट अम्बेडकर की मूल मांगों को पूर्ण रूप से स्वीकार नहीं करता था, फिर भी इसने दलित राजनीतिक चेतना को एक ठोस आधार प्रदान किया। सीट आरक्षण की व्यवस्था ने दलितों को राजनीतिक दृश्यता दी और आगे चलकर यह लोकतांत्रिक ढांचे का एक अनिवार्य हिस्सा बन गया। पूना पैक्ट ने दलितों को यह विश्वास दिलाया कि राजनीतिक अधिकार

संघर्ष का परिणाम होते हैं और आगे की लड़ाई के लिए नीति और रणनीति दोनों का संतुलन आवश्यक है[8]।

राष्ट्रीय राजनीति में दलितों का औपचारिक संगठनीकरण (1935–1946)

1935 से आगे का समय अम्बेडकर के राजनीतिक जीवन में अत्यंत निर्णायक साबित हुआ। इस अवधि में उन्होंने दलित आंदोलन को स्थानीय मुद्दों से निकालकर राष्ट्रीय राजनीति के केंद्र में स्थापित किया। 1936 में उन्होंने Independent Labour Party (स्वतंत्र मजदूर पार्टी) की स्थापना की, जो भारत में जाति और वर्गकृदोनों प्रश्नों को एक साथ संबोधित करने वाला पहला राजनीतिक संगठन था। यह पार्टी इस तथ्य को पहचानती थी कि दलित समुदाय का शोषण केवल सामाजिक आधार पर नहीं, बल्कि आर्थिक संरचनाओं में भी गहराई से निहित था। मजदूर वर्ग के भीतर बड़ी संख्या दलितों की थी, जो दोहरे शोषण के शिकार थे, एक सामाजिक और दूसरा आर्थिक। अम्बेडकर ने इस वर्गीय–जातीय वास्तविकता को राजनीतिक विमर्श में शामिल कर भारतीय राजनीति में नई समझ प्रस्तुत की। यह संगठन मजदूरों की मजदूरी, श्रमिक अधिकारों और औद्योगिक सुरक्षा के मुद्दों को उठाता था, जिसके प्रति औद्योगिक शहरों में रहने वाले दलित समुदाय ने पहली बार सामूहिक राजनीतिक उत्साह दिखाया[9]।

इसी क्रम में 1942 में Scheduled Castes Federation (अनुसूचित जाति महासंघ) की स्थापना हुई, जिसने दलितों को पहली बार राष्ट्रीय स्तर पर राजनीतिक पहचान प्रदान की। यह संगठन केवल चुनावी राजनीति तक सीमित नहीं था, बल्कि यह दलितों के लिए राजनीतिक प्रशिक्षण, वैचारिक स्पष्टता और सामाजिक सुधार के लिए मंच बना। महासंघ का उद्देश्य दलितों को ऐसी राजनीतिक समझ देना था जिससे वे अपने अधिकारों की लड़ाई में किसी भी प्रकार की भावनात्मक निर्भरता में न रहें। अम्बेडकर ने इस संगठन के माध्यम से यह संदेश दिया कि दलित हितों की रक्षा केवल वही कर सकता है जिसका सामाजिक अनुभव और राजनीतिक दृष्टिकोण उसी समुदाय से आता हो[10]।

इस काल में उन पर बंबई प्रेसीडेंसी के श्रम मंत्री का दायित्व भी था, जहाँ उनका कार्य आधुनिक भारतीय श्रम नीति का आधार बना। अम्बेडकर ने श्रमिकों के लिए 8 घंटे का कार्य–दिवस लागू किया जो आधुनिक श्रम अधिकारों की नींव है। उन्होंने मातृत्व लाभ, औद्योगिक विवादों के निपटान और मजदूरों की सुरक्षा संबंधी कई विधानों को लागू करवाया। यह सुधार केवल मजदूर नीति नहीं थे, बल्कि दलित समुदाय के लिए विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण थे क्योंकि वे बड़ी संख्या में कारखानों में श्रमिक के रूप में कार्यरत थे। इन सुधारों ने दलितों को यह अनुभव कराया कि उनका नेतृत्व न केवल सामाजिक समानता की लड़ाई लड़ता है, बल्कि उनके आर्थिक अधिकारों और जीवन–स्तर को भी बेहतर बनाने की ठोस कोशिश करता है। इस प्रकार अम्बेडकर ने राजनीतिक चेतना को केवल नारे में नहीं, बल्कि ठोस नीतिगत निर्णयों के माध्यम से जमीन पर उतारा।

संविधान–निर्माण में दलित चेतना का संस्थागत रूपांतरण (1947–1950)

स्वतंत्र भारत में अम्बेडकर की भूमिका संविधान सभा में अत्यंत निर्णायक रही। संविधान–निर्माण केवल विधायी प्रक्रिया नहीं थी, बल्कि यह सामाजिक न्याय की पुनर्संरचना का अवसर था[11]। अम्बेडकर ने दलित राजनीतिक चेतना को संवैधानिक स्वरूप देने के लिए कानूनी विमर्श, नैतिक सिद्धांतों और आधुनिक राजनीतिक सिद्धांतों का संयोजन किया। उन्होंने संविधान में समानता, स्वतंत्रता, बंधुत्व और न्याय को सर्वोच्च मूल्यों के रूप में स्थापित किया, ताकि भारतीय लोकतंत्र का आधार केवल राजनीतिक ढांचे पर नहीं, बल्कि सामाजिक नैतिकता पर भी टिका रहे।

अम्बेडकर ने अनुच्छेद 17 में अस्पृश्यता के उन्मूलन को कानूनी रूप से लागू किया, जो भारत के इतिहास में सामाजिक क्रांति का सर्वाधिक क्रांतिकारी क्षण था। यह प्रावधान केवल सांकेतिक नहीं थाय यह सामाजिक दासता को अवैध घोषित करने का ऐतिहासिक कदम था। इसके साथ–साथ उन्होंने अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए शिक्षा और रोजगार में आरक्षण की व्यवस्था को संवैधानिक अधिकार का रूप दिया। यह व्यवस्था दलित राजनीतिक चेतना का वैचारिक परिणाम थी, जिसे अम्बेडकर ने दशकों के संघर्ष और वैचारिक स्पष्टता के बाद संवैधानिक ठोस जमीन पर स्थापित किया[12]।

संविधान की प्रस्तावना में समता और न्याय को राष्ट्र के मौलिक सिद्धांत घोषित करते हुए अम्बेडकर ने यह स्पष्ट किया कि भारतीय लोकतंत्र तभी सफल होगा जब समाज के हाशिये पर खड़े समुदाय सम्मान और अधिकारों के साथ उसमें सहभागी हो सकें। उन्होंने बार–बार चेताया कि राजनीतिक लोकतंत्र तब तक स्थायी नहीं हो सकता जब तक सामाजिक लोकतंत्र की स्थापना न हो जाए। यह चेतावनी आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी संविधान निर्माण के समय थी। अम्बेडकर के संवैधानिक योगदान से दलित समुदाय पहली बार यह महसूस करने लगा कि उनका संघर्ष केवल ऐतिहासिक स्मृति नहीं, बल्कि आधुनिक भारत की संरचना का अभिन्न अंग है[13]।

धार्मिक पुनर्रचना और सामाजिक–आध्यात्मिक मुक्ति का चरण (1950–1956)

अम्बेडकर ने अंतिम वर्षों में देखा कि सामाजिक और राजनीतिक अधिकारों के बावजूद दलित समुदाय मानसिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में अभी भी उसी जातिगत व्यवस्था से बंधा हुआ है जिसने सदियों से उन्हें अपमानित किया। उनका मानना था कि दलित चेतना की पूर्ण मुक्ति केवल राजनीतिक स्वतंत्रता से नहीं, बल्कि आध्यात्मिक पुनरुत्थान से प्राप्त हो सकती है। इसी सोच के साथ उन्होंने नव–बौद्ध आंदोलन का नेतृत्व किया। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि हिंदू धर्म की जातिगत संरचना दलितों को कभी भी सम्मान और समानता नहीं दे सकती, इसलिए धर्म परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन का आवश्यक अंग है।

1956 का दिक्षाभूमि आंदोलन भारतीय इतिहास के सबसे बड़े सामाजिक–आध्यात्मिक पुनरुत्थान का क्षण माना जाता है। लाखों दलितों ने अम्बेडकर के साथ बौद्ध धर्म अपनाकर न केवल जातिगत अपमान की जंजीरें तोड़ीं, बल्कि आत्मसम्मान, समानता, स्वतंत्रता और करुणा के नए मूल्यों को अपनाया। यह परिवर्तन केवल धार्मिक नहीं था यह दलितों की राजनीतिक चेतना के अंतिम रूप का प्रतीक था। इसने यह संदेश दिया कि दलित समाज किसी धर्म, परंपरा या सामाजिक संरचना का बंधक नहीं हैय उसकी मुक्ति का मार्ग उसकी स्वयं की सामूहिक इच्छा और आधुनिक मानवीय मूल्यों से निर्मित होता है। नव–बौद्ध आंदोलन ने दलित चेतना में नैतिक साहस और वैचारिक स्वायत्तता का संचार किया और उसे आधुनिक मानवाधिकार दृष्टिकोण से जोड़ दिया[14]।

अम्बेडकर की जन–संगठन रणनीतियों का समग्र विश्लेषण

अम्बेडकर की जन–संगठन रणनीतियाँ किसी एक दिशा में सीमित नहीं थीं वे बहुस्तरीय और बहुआयामी थीं। उन्होंने दलित चेतना को बौद्धिक पुनर्जागरण, सामाजिक सुधार, राजनीतिक संघर्ष, संवैधानिक पुनर्निर्माण और धार्मिक पुनरुद्धार—इन पाँच स्तरों पर संगठित किया। उनकी कार्ययोजना की व्यापकता इस बात में दिखती है कि शिक्षा से लेकर कानून तक, आंदोलनों से लेकर संस्थाओं तक, और राजनीतिक दलों से लेकर धर्म परिवर्तन तक प्रत्येक कदम एक–दूसरे से जुड़ा हुआ था। वे मानते थे कि दलित मुक्ति का कोई एक मार्ग नहीं है, इसके लिए मानसिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और आध्यात्मिक—सभी क्षेत्रों में समानांतर संघर्ष आवश्यक है।

उनकी संगठन रणनीतियाँ आधुनिक राजनीतिक सिद्धांतों से प्रेरित थीं, लेकिन वे भारतीय सामाजिक वास्तविकता में गहराई से जड़ित थीं। वे जानते थे कि दलित समुदाय के सामने सबसे बड़ी चुनौती

सामाजिक हीनता और मनोवैज्ञानिक दमन है, इसलिए उन्होंने सबसे पहले आत्मसम्मान की पुनर्प्राप्ति पर जोर दिया। संगठनों, पत्र–पत्रिकाओं और जनसभाओं के माध्यम से उन्होंने सामूहिक चेतना का निर्माण किया। प्रत्यक्ष आंदोलनों ने इस चेतना को जनशक्ति में रूपांतरित किया। गोलमेज सम्मेलन और राजनीतिक दलों ने इसे संस्थागत स्वरूप दिया। संविधान निर्माण ने इसे स्थायी राजनीतिक आधार प्रदान किया। अंततः नव–बौद्ध आंदोलन ने इसे आध्यात्मिक ऊर्जा में बदलकर दलित समुदाय को पूर्ण स्वाधीनता की अनुभूति कराई[15]। अम्बेडकर के आंदोलन की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उन्होंने दलित चेतना को प्रतिक्रियात्मक नहीं, बल्कि रचनात्मक शक्ति के रूप में परिभाषित किया। वे केवल सामाजिक बुराइयों का विरोध नहीं करते थे, बल्कि वे उसके स्थान पर नए, आधुनिक, तर्कसंगत और समानतावादी मूल्यों को स्थापित करते थे। यह दृष्टिकोण दलित राजनीतिक चेतना को अन्य आंदोलनों से भिन्न बनाता है[16]।

निष्कर्ष

1917 से 1956 का काल अम्बेडकर द्वारा निर्मित दलित राजनीतिक चेतना का स्वर्णकाल कहा जा सकता है। इस अवधि में उन्होंने जिस प्रकार दलित समाज को बौद्धिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और आध्यात्मिक स्तर पर पुनर्संगठित किया, वह विश्व इतिहास में किसी भी सामाजिक–राजनीतिक क्रांति से कम नहीं है। वे केवल दलितों के नेता नहीं थेकृवे नए भारत के निर्माता थे जिन्होंने सामाजिक न्याय, समानता और लोकतांत्रिक नैतिकता को आधुनिक राष्ट्र–राज्य का आधार बनाया।

उनकी रणनीतियों ने दलित समाज को अदृश्यता से दृश्यता, मौन से अभिव्यक्ति, दासता से नागरिकता और अपमान से आत्मसम्मान की यात्रा में आगे बढ़ाया। आज भारतीय लोकतंत्र जितना जीवंत और बहुलतावादी है, उसमें अम्बेडकर की इस दीर्घकालीन चेतना निर्माण प्रक्रिया की गूँज स्पष्ट रूप से सुनाई देती है। इसलिए 1917–1956 का अम्बेडकर युग केवल नेतृत्व का इतिहास नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का वैज्ञानिक मॉडल है जिसे समझे बिना भारतीय लोकतंत्र की आत्मा को समझा नहीं जा सकता।

संदर्भग्रंथ सूचीः

[1] शर्मा, एस. (2024). अम्बेडकर का दलित संघर्ष में योगदानः एक सामाजिक–राजनीतिक विश्लेषण, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ सोशल साइंस एंड रिसर्च, 2(3)।

[2] लेले, पी. आर. (1979). महाड़ सत्याग्रहः मानवाधिकारों की स्थापना की दिशा में एक ऐतिहासिक कदम. डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर राइटिंग्स एंड स्पीचेस, खंड 17 (भाग–1), सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार।

[3] इम्प्री संस्था. (2024). जल न्याय, जातिगत बहिष्कार और महाड़ सत्याग्रह की समसामयिक प्रासंगिकता, इम्प्री इम्पैक्ट एंड पॉलिसी रिसर्च इंस्टीट्यूट।

[4] इंटरनेशनल जर्नल ऑफ पॉलिटिकल साइंस एंड गवर्नेंस (2021). भारत में दलित आंदोलन और अम्बेडकर की भूमिका।

[5] रासल, ए. (2011). अम्बेडकर का जाति और भूमि सम्बन्धी दृष्टिकोणः एक अध्ययन. रीजनल अनेलिसिस स्टडी जर्नल।

[6] सिरपांगी, एस. एस. (2020). अम्बेडकर का महाड़ और गांधी का दांडी सत्याग्रहः तुलनात्मक विश्लेषण, प्रबुद्ध–सोशल इक्वैलिटी जर्नल, 5।

[7] IOSR जर्नल ऑफ ह्यूमैनिटीज एंड सोशल साइंस. (2025). भारतीय दलित मुक्ति आंदोलन में अम्बेडकर का योगदानः नई दृष्टि।

[8] कौर, जी., एवं चौधरी, एस. (2024). दलित राजनीतिक चेतना के निर्माण में डॉ. अम्बेडकर की भूमिका, मल्टीआर्टिकल्स जर्नल, 3(4)।

[9] सिरामथी, एक्स. (2021). महाड़ सत्याग्रह का समग्र अध्ययनः अम्बेडकर के संदर्भ में. ऑल अबाउट अम्बेडकर ऑनलाइन जर्नल।

[10] जे. एस. नलिनी (2020). अम्बेडकर और आधुनिक भारतीय लोकतंत्र. ओरिएंट ब्लैकस्वान।

[11] राम, एन. (2020). दलित राजनीति और अम्बेडकर की वैचारिक दृष्टि. भारतीय समाजशास्त्र समीक्षा।

[12] दृष्टि IAS- (2023). अम्बेडकर और सामाजिक न्याय पर मुख्य परीक्षा अभ्यास लेख, दृष्टि क्लासिक्स।

[13] ओम्वेद्त, जी. (2019). अम्बेडकरः आधुनिक भारत के निर्माता. नयी दुनिया प्रकाशन।

[14] फुले, एस. (2023). सामाजिक क्रांति, अम्बेडकर और नवबौद्ध आंदोलन. इंडियन जर्नल ऑफ इक्वैलिटी स्टडीज।

[15] सामाजिक न्याय मंत्रालय. (2023). डॉ. बी. आर. अम्बेडकरः लेखन और भाषण, भारत सरकार प्रकाशन।

[16] गायतोंडे, ए. जी. (2018). दलित आंदोलन का इतिहास और अम्बेडकर की भूमिका. पॉपुलर प्रकाशन।